शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page – 106 -108

भारतीय ज्ञान परम्परा के निर्माण में संत कवयित्री लल्लेश्वरी का योगदान

ममता मौर्या
शोधार्थी ,हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला, जिला- काँगड़ा, पिन- 176215
Email: mamt0960@gmail.com मो.9651625472

Received– 27June - 2026
Accepted-29 June- 2026
Published– 30 June 2026
Corresponding Author-
ममता मौर्या
शोधार्थी, हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश केंद्रीय विश्वविद्यालय, धर्मशाला ,जिला- काँगड़ा, पिन- 176215 Email: mamt0960@gmail.com
मो.9651625472
DOI-https://doi.org/10.67275/SU.2026.041428
Funding Policy-
'Shodh Utkarsh' is an independent journal and receives no financial support or grant from any public, commercial, or not-for-profit organization.
वित्त पोषण नीति-
'शोध उत्कर्ष' एक स्वतंत्र पत्रिका है। इसे किसी भी सार्वजनिक, वाणिज्यिक या गैर-लाभकारी संगठन से कोई वित्तीय सहायता, अनुदान या फंडिंग प्राप्त नहीं होती है।
Copyright Notice -
© 2026 The Author(s). This work is licensed under a Creative Commons Attribution 4.0 International License (CC-BY 4.0).
कॉपीराइट सूचना-
© २०२६ लेखक। यह कार्य क्रिएटिव कॉमन्स अ Attribution 4.0 इंटरनेशनल लाइसेंस (CC-BY 4.0) के अंतर्गत लाइसेंस प्राप्त है।
OPEN ACCESS Shodh Utkarsh CC-BY 4.0

सारांश- भारतीय ज्ञान परम्परा विश्व की सबसे प्राचीन एवं समृद्ध ज्ञान-परम्पराओं में से एक है। इसकी आधारशिला वेद, उपनिषद्, आगम, पुराण, बौद्ध, जैन तथा भक्ति परम्परा में निहित है। इस परम्परा का मूल उद्देश्य मनुष्य के बाह्य एवं आंतरिक विकास के माध्यम से आत्मबोध, लोककल्याण और विश्वबंधुत्व की स्थापना करना रहा है। मध्यकालीन संत साहित्य ने इस ज्ञान परम्परा को जनसामान्य तक पहुँचाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस संदर्भ में कश्मीर की महान संत कवयित्री लल्लेश्वरी (ललद्यद) का योगदान अत्यंत उल्लेखनीय है।लल्लेश्वरी ने अपने अनुभवजन्य आध्यात्मिक ज्ञान को सरल लोकभाषा में व्यक्त किया। उनके 'वाख' केवल आध्यात्मिक उपदेश नहीं हैं, बल्कि भारतीय ज्ञान परम्परा के मूलतत्त्व आत्मज्ञान, अद्वैत, मानवतावाद, गुरु- परम्परा, आत्मानुभूति तथा धार्मिक समन्वय के सशक्त प्रतिपादक हैं। उन्होंने बाह्य आडंबर, कर्मकाण्ड, जाति-पाँति तथा संकीर्ण धार्मिक मान्यताओं का विरोध करते हुए आत्मानुभूति को मोक्ष का वास्तविक मार्ग बताया। इस प्रकार लल्लेश्वरी की वाणी भारतीय ज्ञान परम्परा को लोकजीवन से जोड़ने वाली एक महत्त्वपूर्ण कड़ी सिद्ध होती हैं। उनके वाखों में ज्ञान को केवल शास्त्रीय या बौद्धिक उपलब्धि न मानकर जीवन के प्रत्यक्ष अनुभव और आत्मबोध से जोड़ा गया है। उन्होंने बाह्य आडंबर ,रूढ़ियों और धार्मिक भेदभाव के स्थान पर अंत:शुद्धि ,आत्मसंयम और सहिष्णुता को महत्त्व दिया। उनकी दृष्टि में परम सत्य मनुष्य के भीतर विद्यमान है ;इसलिए जाति ,धर्म ,लिंग और सामाजिक भेद मनुष्य की वास्तविक पहचान नहीं हो सकते
बीज शब्द- भारतीय ज्ञान परम्परा, लल्लेश्वरी, ललद्यद, वाख, कश्मीर शैवदर्शन, संत साहित्य, आत्मज्ञान, स्त्री चेतना।

विषय प्रवेश- भारतीय संस्कृति का मूल आधार ज्ञान है। यहाँ ज्ञान का अर्थ केवल सूचना अथवा बौद्धिक उपलब्धि नहीं, बल्कि आत्मानुभूति, नैतिकता, आध्यात्मिक चेतना और लोकमंगल से है। वेदों में कहा गया है—"सा विद्या या विमुक्तये" अर्थात् वही विद्या है जो मनुष्य को बन्धनों से मुक्त करे। उपनिषदों ने आत्मा और ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया, जबकि भगवद्गीता ने ज्ञान, कर्म और भक्ति के समन्वय को जीवन का आदर्श माना। यही परम्परा आगे चलकर संत साहित्य में अधिक लोकाभिमुख रूप में विकसित हुई। मध्यकालीन भारत सामाजिक, धार्मिक एवं राजनीतिक दृष्टि से संक्रमण का काल था। समाज में जातिगत भेदभाव, कर्मकाण्ड, रूढ़िवादिता तथा धार्मिक कट्टरता बढ़ रही थी। ऐसे समय में संत कवियों एवं संत कवयित्रियों ने जनभाषा में आध्यात्मिक और मानवीय मूल्यों का प्रचार किया। उत्तर भारत में कबीर, रैदास, गुरु नानक, मीरा, सहजोबाई, दयाबाई तथा कश्मीर में लल्लेश्वरी जैसी विभूतियों ने भारतीय ज्ञान परम्परा को नई दिशा प्रदान की।

लल्लेश्वरी का स्थान भारतीय संत परम्परा में अत्यंत विशिष्ट है। वे केवल कश्मीर की संत कवयित्री नहीं, बल्कि सम्पूर्ण भारतीय आध्यात्मिक परम्परा की प्रतिनिधि हैं। उनकी वाणी में कश्मीर शैवदर्शन, योग, वेदान्त तथा अनुभवजन्य आध्यात्मिक चेतना का अद्भुत समन्वय मिलता है। उन्होंने ज्ञान को केवल शास्त्रों तक सीमित नहीं रखा, बल्कि उसे जीवनानुभव का विषय बनाया। उनके अनुसार आत्मा का साक्षात्कार ही वास्तविक ज्ञान है। लल्लेश्वरी का साहित्य 'वाख' के रूप में उपलब्ध है। इन वाखों में सरल भाषा, गहन दार्शनिकता तथा जीवनोपयोगी संदेश का अद्भुत समन्वय है। उनकी भाषा लोकजीवन से जुड़ी हुई है, इसलिए उनका दर्शन सामान्य जन तक सहज रूप से पहुँच सका। यही कारण है कि लल्लेश्वरी को भारतीय ज्ञान परम्परा के लोकव्याख्याता के रूप में भी देखा जाता है।

भारतीय ज्ञान परम्परा - भारतीय ज्ञान परम्परा बहुत प्राचीन है और इसका आरम्भ वेदों से माना जाता है। उल्लेखनीय है कि 'वेद' शब्द 'विद्' धातु से बना है जिसका अर्थ जानना होता है। भारतीय ज्ञान परम्परा केवल भारत की सीमाओं तक ही सीमित नहीं रही रही है, बल्कि

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page – 106 -108

विश्व के विभिन्न हिस्सों में इसका गहरा प्रभाव पड़ा है। भारतीय ज्ञान परम्परा में साहित्य की भूमिका अत्यंत महत्वपूर्ण है। साहित्य ने भारतीय संस्कृति, इतिहास और दर्शन को संरक्षित और प्रचारित करने में महत्व-पूर्ण योगदान दिया है। इसके माध्यम से हम अपने प्राचीन ज्ञान और सम्प्रदाय को समझ सकते हैं और उन तक पहुंच सकते हैं 1 भारतीय ज्ञान परम्परा अद्वितीय ज्ञान और प्रज्ञा का प्रतीक है जिसमें ज्ञान और विज्ञान, लौकिक और पारलौकिक, कर्म और धर्म तथा भोग और त्याग का अद्भुत समन्वय है। वेदों में कहा भी गया है कि 'सा विद्या या विमुक्तये' अर्थात् कर्म वही है जो बंधनों से मुक्त करे और विद्या वही है जो मुक्ति का मार्ग दिखाए।

संत कवयित्री लल्लेश्वरी का परिचय एवं उनके वाणी का स्वरूप- कश्मीर की लल्लेश्वरी महिला संतो में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं। इन्होंने अपने विचारों से भारतीय ज्ञान परम्परा व साहित्य के विकास एवं समृध्दि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। इनके अन्य कई नाम लालदेद वा लल्ला तथा लल्ला 'आरिफ' भी प्रसिध्द है। इनके माता-पिता के बारे कहा गया है कि वे श्रीनगर, कश्मीर से लगभग 4 मील दक्षिण पूर्व स्थित 'पांड्रेठन' नामक स्थान के निवासी थे जो अशोककालीन कश्मीर की कभी राजधानी भी रह चुका था। इनका जन्म सं. 1392 में हुआ था। इनकी जाति को किसी-किसी ने 'देद' शब्द के कारण ढेढ वा मेहतर तक समझा है, किन्तु साधारणतः इनके परिवार को संभ्रांत कहा जाता आया है। 'देद' शब्द यहाँ पर कश्मीरी भाषा के 'देद्दी' शब्द का संक्षिप्त रूप हो सकता है जिसका अर्थ आयु और पदवी में बड़ी हुआ करता है और जो हिन्दी के दीदी शब्द का समानार्थक भी कहा जा सकता है।

जनश्रुतियो एवं किंवदतियों के अनुसार उनका विवाहित जीवन अत्यंत कष्टमय भा। अतः अपने पति एवं ससुराल के अन्य सदस्यों की कुरता से व्यथित हो कर वे वैरागिणी बनी और जंगलों और गलियों में घूम-घूम कर जीवन की असारता की स्थापना तथा सामाजिक कुरीतियों का बहिष्कार करने लगी। परमब्रह्म की कृपा से उनका संपर्क महान शैव दार्शनिक वसुगुप्त की शिष्य परंपरा के प्रख्यात आचार्य सिद्ध श्रीकंठ से हुआ। सिद्ध श्रीकंठ ने लल्लेश्वरी को शैवाद्वैत के दार्शनिक एवं साधनात्मक पक्ष से संबंधित दीक्षा प्रदान की और इस प्रकार लल्लेश्वरी शिव साधिका बनी।

लालदेद की रचनायें कश्मीरी भाषा में है और उन्हें एकत्र करके संग्रहों के रूप में प्रकाशित किया गया है। अत्यन्त कठिन खोज के पश्चात् सर जॉर्ज ग्रियर्सन ने कुछ विद्वान पंडितों की सहायता से उनकी कविताओं का एक संग्रह तैयार किया जिसमें उनकी कविताओं का मूल तत्व समाहित है। मूल कश्मीरी में इनका संग्रह 'लालदेद-ए-हिन्द वाक' के नाम से मिलता है। इनके 60 पदों का एक संग्रह 'लल्लेश्वरी वाक्यानि' नाम से मिलता है जिसका पद्यानुवाद राजानक भास्कराचार्य ने संस्कृत में किया है। लल्लेश्वरी की रचनाएँ 'वाख' के नाम से प्रसिद्ध हैं। 'वाख' कश्मीरी भाषा का एक काव्यरूप है, जिसमें संक्षिप्त शब्दों में गहन आध्यात्मिक अनुभूतियों की अभिव्यक्ति की जाती है। उनके वाख लोकभाषा में रचे गए, जिसके कारण वे सामान्य जनता में अत्यंत लोकप्रिय हुए।

भारतीय ज्ञान परम्परा के निर्माण में संत कवयित्री लल्लेश्वरी का योगदान-भारतीय ज्ञान परम्परा का मूल उद्देश्य आत्म-ज्ञान की प्राप्ति है। उपनिषदों का आत्मानं विद्धि' तथा 'तत्त्वमसि' का संदेश लल्लेश्वरी के वाखों में नवीन रूप से अभिव्यक्त हुआ है। लल्लेश्वरी का महत्व केवल एक संत कवयित्री के रूप में नहीं, बल्कि ऐसी चिंतक के रूप में है जिसने आध्यात्मिक ज्ञान को सामान्य मनुष्य के जीवन और अनुभव से जोड़ा।उन्होंने कहा है कि जब तक मनुष्य स्वयं को नहीं पहचानता तब तक बाहरी ज्ञान अधूरा है।

लल्लेश्वरी बाहरी मूर्ति-पूजा की अपेक्षा अंतःचेतना और आत्मसाधना को अधिक महत्त्व देती हैं। कवयित्री कहती हैं कि मनुष्य ने पूजा के लिए पत्थर की दो आकृतियाँ बनाकर एक को देवता और दूसरे को मंदिर मान लिया, जबकि दोनों मूलतः एक ही पत्थर से बने हैं। अतः केवल बाहरी कर्मकांड से परमात्मा की प्राप्ति संभव नहीं है। लल्लेश्वरी के अनुसार वास्तविक देवता अमेय और चेतन स्वरूप है, जिसे बाहर नहीं बल्कि अपने भीतर अनुभव किया जाना चाहिए। उसके साक्षात्कार के लिए प्राण और चित्त का एकीकरण, अर्थात् शरीर, मन और चेतना को साधना आवश्यक है। इस पद के माध्यम से कवयित्री धार्मिक आडंबर का विरोध करते हुए आत्मज्ञान, अंतर्मुखी साधना और चेतना की शुद्धि को ईश्वर-प्राप्ति का वास्तविक मार्ग बताती हैं।

देह वटा देवर वटा,
प्यठ बुन लुय् एकवाट्।
पूज् कस् करख् हूटबटा
कर् मनस् त पवनस् संगाट्॥

यहां पर कवियित्री ने धार्मिक अंधविश्वासों की भर्त्सना करते हुए मूर्ति पूजा आदि बाह्य विधानों का जो कि उस समय के समाज में प्रचलित थे बहिष्कार किया है। उन्होंने अपने समाज को साफ शब्दों में कहा कि तीर्थाटन या स्नानादि से अगर मुक्ति मिलती तो भला मछली क्यों हमेशा पानी में पड़ी रहती, वह भी जीवन मुक्त होती। संत लालदेद का आराध्यदेव वह परमतत्त्व है जिसे शिव, केशव, जिन, नाथ में से कोई भी नाम दे सकते हैं। किंतु इसके कारण उसमें किसी प्रकार का अंतर नहीं आ सकता। इनमें में किसी भी एक अथवा इनसे अन्य नामधारी तत्त्व के प्रति भो हार्दिक विश्वास रखने वाला सांसारिक दःखों से मुक्ति प्राप्त कर सकता है

शिव् वा केशव् वा जिन् वा,
कमलजनाथ् नाम् दारिन् युस्।
म्य अबलि कासितन् भवरुज्,
सुह् वा सुह् वा सुह् वा सुह्॥

इस पद में लल्लेश्वरी धार्मिक संकीर्णता से ऊपर उठकर परमात्मा की एकता का संदेश देती हैं। लल्लेश्वरी विभिन्न धार्मिक नामों और मतों के बीच भेद करने के बजाय ईश्वर की एकता और सार्वभौमिकता पर बल देती हैं। पद में उनकी समन्वयवादी, उदार और आध्यात्मिक चेतना व्यक्त होती है। उनके लिए मुक्ति किसी विशेष नाम या संप्रदाय से नहीं, बल्कि परम सत्य की अनुभूति और आत्मज्ञान से प्राप्त होती है।

मूढव् दीशिथ् त पशिथ् लाग्,
जरु त कलु श्रुव्तवोन् जडरूपि आस्।
युस् यिय् दपिय् तस् तिथु बोल्,
सुय् छुय् तत्त्वविदस् अभ्यास्॥

इस पद के माध्यम से लल्लेश्वरी ज्ञान के वास्तविक स्वरूप और तत्त्वबोध की साधना पर बल देती हैं। कवयित्री का कहना है कि मनुष्य को संसार में रहते हुए भी अपनी इंद्रियों और मन के प्रति एक प्रकार की साक्षी-दृष्टि विकसित करनी चाहिए। यहाँ 'मूढ़ होकर देखना', 'बधिर होकर सुनना' और 'अंधे होकर देखना' जैसे विरोधाभासी कथनों का आशय यह नहीं है कि मनुष्य वास्तव में अपनी इंद्रियों को निष्क्रिय कर दे, बल्कि वह देखे-सुने और अनुभव करे, किंतु उनसे आसक्त न हो।

शोध उत्कर्ष Shodh Utkarsh
A Peer Reviewed Refereed Multidisciplinary Quarterly International E-Journal
ISSN-2993-4648 Year/Volume: 04, Issue: 14 | April - June 2026 | Impact Factor: 4.5 Page – 106 -108

भारतीय ज्ञान परम्परा में गुरु को ज्ञान का प्रकाश माना गया है। लल्लेश्वरी ने भी अपने गुरु के प्रति गहन श्रध्दा व्यक्त करते हुए कहा कि गुरु ही साधक को आत्मज्ञान की दिशा प्रदान करता हैं। उनके अनुसार गुरु केवल उपदेशक नहीं, बल्कि साधक के भीतर छिपे सत्य को जागृत करने वाला मार्गदर्शक है। इसलिए उनकी वाणी गुरु - शिष्य परम्परा की महिमा का भी सशक्त प्रतिपादन करती है।

ये ग्वरा परमो ग्वरा,
सद्भाव् भाव् त म्य च् ह् ।
जुह् ज् नि उपनेय् कन्दापुरा,
हूह् कव त् रुनु त हाह् कव ततु ॥

इस पद में लल्लेश्वरी गुरु से प्राप्त होने वाले ज्ञान और आत्मबोध की महत्ता को रेखांकित करती हैं। इस प्रकार कवयित्री गुरु को अज्ञान से ज्ञान और भ्रम से आत्मबोध की ओर ले जाने वाली शक्ति के रूप में प्रतिष्ठित करती हैं।

सहजस् शम् त दम् नो गछे,
इछि प्रावख् मुक्तिद्वार् ।
सलिलस् लवण् जन् मीलिथ् त गछि,
तोति छुय् दुर्लभ् सहज-विचार् ॥

इस पद में कवयित्री संकेत करती हैं कि कोई तपस्या साधन तभी सार्थक हैं, जब इनके पीछे सही विवेक-बुद्धि हो। पद के अंत में नमक और पानी का उदाहरण अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। जिस प्रकार नमक पानी में घुलकर अपना अलग अस्तित्व खो देता है और दोनों एकरूप हो जाते हैं, उसी प्रकार साधक को अपने अहं और अलगाव की भावना समाप्त करके परमतत्त्व के साथ एकत्व प्राप्त करना चाहिए। किंतु यह सहज ज्ञान या अवस्था अत्यंत दुर्लभ है; केवल बाहरी आचरण से इसे प्राप्त नहीं किया जा सकता। कवयित्री का मूल संदेश है कि मन की शांति, इंद्रिय-संयम, विवेक और आत्मानुभूति के माध्यम से ही साधक सहज अवस्था और मुक्ति की ओर बढ़ सकता है। स्त्री चेतना के संदर्भ में भी लल्लेश्वरी के वाख अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि ये स्त्री को केवल भोग या पारिवारिक भूमिका तक सीमित नहीं करतीं, बल्कि उसके मातृत्व और पत्नी-रूप को पहचानते हुए अंततः उसकी आध्यात्मिक सत्ता और स्वतंत्र चेतना को महत्त्व देती हैं। लेखिका कहना चाहती हैं कि स्त्री सहित प्रत्येक मनुष्य को सामाजिक भूमिकाओं और मोह से ऊपर उठकर अपने वास्तविक आत्मस्वरूप को पहचानना चाहिए।

सय् माता रूपि पय् दिये,
सय् भार्या-रूपि करि विलास् ।
सय् माया-रूपि जीव् हरे,
शिव् छुय् क्रूठु तांय् चे.न् उपदेश् ॥

इस वाख में लल्लेश्वरी स्त्री के मातृत्व, पत्नी और माया-स्वरूप तीनों रूपों को सामने रखती हैं। माता के रूप में स्त्री संतान को प्रेम और पोषण देती है तथा पत्नी के रूप में जीवन में प्रेम, आकर्षण और आनंद का आधार बनती है। किंतु कवयित्री यह भी संकेत करती हैं कि सांसारिक संबंध और माया मनुष्य को जन्म-मृत्यु तथा मोह के चक्र में बाँधते हैं। इसलिए वह बाहरी संबंधों से ऊपर उठकर शिव-तत्त्व की अनुभूति और आत्मज्ञान प्राप्त करने का उपदेश देती हैं।

निष्कर्ष-

निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि संत लालदेद एक सिद्ध योगिनी थी। जीपन के सार तत्व को उन्होंने प्राप्त कर लिया था। ब्रह्म एवं जीव जगत के सापेक्ष संबंधों को जान चुकी थीं और उस परमानन्द की स्थिति पर पहुँच चुकी थी जहाँ पहुँच कर और कुछ जानने, समझने एवं प्राप्त करने की इच्छा समाप्त हो जाती है। संत लालदेव के पद पूर्णतया भक्ति रस में डूबे एवं गेय हैं। उन्होने अपने पदों में जिस विषय का प्रयोग किया है वह अत्यन्त गूढ़ है और दर्शन एवं योग के विषय में जानने वाला ही उसके मर्म को समझ सकता है। उनकी भाषा सहज सरल और विषय को सम्यक् रूप में व्यक्त करने में सक्षम है। छंद की दृष्टि से भी उनके पद निर्दोष हैं। ब्रह्मतत्व एवं आत्मतत्व का निरूपण वे जिस सहज ढंग से कर देती हैं वह बड़े-बडे ज्ञानियो के लिये भी विरल है। निम्न जाति की होते हुये भी उनकी प्रज्ञा इतना प्रखर, इतनी उर्वर है कि सम्पूर्ण मध्यकाल में उनकी रचनायें उपने आप में अनूठीबी हैं। निर्गुण ब्रहा की उपासिका लालदेद शंकराचार्य के वेदान्त और कहीं-कहीं उपनिषदों से भी प्रभावित दिखाई देती हैं। उनकी विशिष्टता इस अर्थ में है कि उत्तर भारत में उन्से पूर्व किसी भी कवि की रचना इतने सुपुष्ट रूप में परिलक्षित नहीं होती, इस तरह से वे उत्तर भारत की संत परम्परा की प्रारम्भिक कवयित्री सिद्ध होती हैं।

***

सन्दर्भ ग्रंथ-

1.सिंह,डॉ.विजयेंद्र प्रताप, भारतीय ज्ञान परम्परा और हिन्दी साहित्य, प्रथम संस्करण - 2026,प्रकाशन - आर्यन डिजिटल प्रेस ,नई दिल्ली, पृष्ठ सं -8,9
2.चतुर्वेदी, आचार्य परशुराम, उत्तरी भारत की संत परंपरा,तृतीय संस्करण - 1972, प्रकाशन - लीडर प्रेस,इलाहाबाद पृष्ठ सं -99,100
3.भास्कराचार्य, श्री राजानक - लल्लेश्वरीवाक्यानि ,प्रकाशन - चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी, पृष्ठ सं - 4,7,9,13,25,26